Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor: 4.081
Volume-12, Issue-3, December-2018 www.researchguru.net

व्याकरण शास्त्र के निकष पर भट्टिकाव्य

डॉ. योगेश शर्मा
असिसटेंट प्रोफेसर वनस्थली विद्यापीठ
टोंक, राजस्थान

सुलक्षणा शर्मा (शोधार्थी)
वनस्थली विद्यापीठ टोंक, राजस्थान

शोध संक्षेप

"मुखं व्याकरणं स्मृतम्" व्याकरण की गणना वेद के षडगे में होती है। व्याकरण को वेदपुरुष का मुख माना जाता है। मुख अभिव्यक्ति और विश्लेषण का साधन है तदवत् व्याकरण भी पद-पदार्थ एवं वाक्य वाक्यार्थ की अभिव्यक्ति तथा प्रकृति प्रत्यय के विश्लेषण का साधन है। महाकवि भट्टि अपने समय के असाधारण विद्वान थे। ये व्याकरण और काव्यशास्त्र के धुरन्धर एवं मर्मज्ञ पण्डित थे। व्याकरणशास्त्र की कठिनाईयों को दूर करते हुए काव्य के द्वारा व्याकरण सिखाने का प्रयत्न करने का श्रेय भट्टि को है। इसमे उन्हे पर्याप्त सफलता मिली है। इसका प्रमाण यह है कि ग्रंथ का मुख्य नाम 'रावणवध' प्रचलित न होकर 'भट्टिकाव्य' ही प्रचलित हो गया। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में व्याकरणशास्त्र की दृष्टि से भट्टिकाव्य का महत्व बताया गया है।

प्रस्तावना

महाकवि भट्टि की एक मात्र रचना भट्टिकाव्य ही प्राप्त होती है। यह महाकाव्य 22 सर्ग और 1624/1625 श्लोको मे विभक्त है तथा महाकाव्य के लक्षणो से पूर्णतया समन्वित है। यह काव्य व्याकरण सिखाने के लिए ही रचा गया था। 641 ईस्वी में भट्टिकाव्य का निर्माण हुआ। उस समय से लेकर आज तक भट्टिकाव्य पर अनेक कार्य हुए है, परन्तु इस काव्य पर व्याकरण की दृष्टि से अभी तक कोई शोध कार्य दृष्टिगत नहीं हुआ है। जबकि यह काव्य व्याकरण सिखाने के लिए ही रचा गया था। भट्टिकाव्य व्याकरणात्मक काव्यो मे सर्वाग्रणी रहा है। अतः व्याकरण के लक्षणों को लक्ष्य द्वारा उपस्थित करना इसका मुख्य प्रयोजन है। इसी उद्देश्य से मेरे द्वारा इस शोध पत्र का चयन किया गया है। लक्ष्य द्वारा लक्षणो को उपस्थित करने की दृष्टि से यह महाकाव्य चार काण्डो मे विभाजित है। जिनमें तीन काण्ड संस्कृत व्याकरण के अनुसार विविध शब्द रूपो को प्रयुक्त कर रचयिता का उद्देश्य सिद्ध करते है। मध्य मे एक काण्ड काव्य सौष्ठव के कतिपय अंगो को अभिलक्षित कर रखा गया है। रचना का अनुक्रम इस प्रकार है-

1. **प्रथम काण्ड** - व्याकरणानुसारी विविध शब्द रूपो को प्रकीर्ण रूप से संगृहीत करता है। यथा- अप्सरस् हलन्त स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग कालान्तर मे अप्सरा स्त्रीलिंग मे होने लगा। परन्तु भ. का. मे अप्सरस् शब्द का ही प्रयोग मिलता है- अप्सरसाम्-भ.का.1/7[1]
2. **द्वितीय काण्ड** - 'अधिकारकाण्ड' जिसमे पाणिनीय व्याकरण के कतिपय विशिष्ट अधिकारो मे प्रदर्शित नियमो के अनुसार शब्द प्रयोग है। भट्टि ने अधिकारकाण्ड मे प्रमुख रूप से क्रियाओ के प्रयोग संबंधी नियमो का विवरण प्रस्तुत किया है। जैसे- 'ट' प्रत्यय (टाधिकार), आम् अधिकार, स्त्रीलिंग, आत्मनेपर-परस्मैपद आदि।

3. **तृतीय काण्ड** - साहित्यिक विशेषताओ को अभिलक्षित करने की दृष्टि से रचा गया है। अतएव इस काण्ड को महाकवि ने 'प्रसन्नकाण्ड' की संज्ञा दी है।
4. **चतुर्थ काण्ड** - यह काण्ड संस्कृत व्याकरण के एक जटिल स्वरूप तिङ्न्त के विविध धातु रूपो को प्रदर्शित करता है। यह भट्टिकाव्य मे सबसे बड़ा काण्ड है। भट्टिकाव्य के 14 से 22 वें सर्ग तक एक-एक सर्ग मे एक-एक लकार का प्रायोगिक दिग्दर्शन है। इन सर्गो के अतिरिक्त अन्य सर्गो मे इन लकारो के सामान्य रूप से प्रयोग मिलते है।

जैसा कि महाकवि भट्टि के संकेत से ही स्पष्ट है कि उनकी रचना का मुख्य उद्देश्य व्याकरण के नियमो की जानकारी देना है। व्याकरण के नियम उनकी भाषा मे एक विशेष रूप मे निबद्ध किए गए है। कई स्थानो पर श्लोक रचना मे भट्टि ने पाणिनि के सूत्रो को ज्यों का त्यों प्रयोग किया है। जैसे- पाणिनीय सूत्र 3.1.41 'विदांकुर्वन्त्वित्यन्तरस्याम्' का 'विदांकुर्वन्तु भट्टिकाव्यम् मे 6/4[2] मे दिया गया है। इसी प्रकार पा.सू. 3.1.122 'अमावस्यदन्यतरस्यात्' का 'अमावस्यासमन्वये भ. का. मे 6/64[3] मे दिया गया है। पा. सू. 8.3.90 'सूत्रं प्रतिष्णातं' का 'सुप्रतिष्णातसूत्राणाम्' भ. का. मे 9/83[4] मे प्रयोग किया है।

'ट' प्रत्यय के सभी नियमो का यहाँ वर्णन न करके भट्टि ने पाँचवे सर्ग के 97 वें श्लोक से किया है, शायद काव्य प्रवाह मे व्यवधान को रोकने के लिए ऐसा किया है। अधिकार काण्ड मे प्रायः एक सूत्र का एक ही उदाहरण मिलता है। जैसे पा.सू. 3.2.16 'चरेष्टः' सूत्र का 'वनेचराऽग्रयाणाम्' भ. का. 5.97[5] पा.सू.3.2.17 'भिक्षासेनादायेषु च' सूत्र का 'आदायचरः' भ. का. 5/97[5] मे दिया गया है।

- महाकवि भट्टि ने पाणिनि सूत्रो को क्रम से निबद्ध करते हुए बीच मे आने वाले सभी वैदिक सूत्र, प्रत्युदाहरण तथा कात्यायन के वार्तिको को छोड़ दिया है।
- संज्ञा के प्रयोग मे भट्टिकाव्यम् मे सर्वाधिक उपयुक्त उदाहरण मिलता है। जैसे- 'स्थाध्वोरिच्च सूत्र 2.1.17 मे धु से तात्पर्य दा/धा धातुओ से है, परन्तु भट्टि ने केवल एक धातु का प्रयोग 'आधिषत भ.का. 7/102[6] मे दिया है। प्रत्याहार सूत्रो मे भी एक-एक उदाहरण दिया है जैसे- पा. सू. 3.1.36 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' के इच् प्रत्याहार मे से केवल 'ईहांचक्राते' भ. का. 5/106[7] मे दिया है।
- जिस विशेष शब्द से पाणिनि सूत्रो मे धातु समूह का निर्देश किया जाता है उसी विशिष्ट शब्द का उदाहरण भ. का. मे मिलता है, अन्य धातुओ को छोड़ दिया गया है। जैसे- पा. सू. 3.1.57 'इरितो वा' से इरित धातुओ विहित च्लि के स्थान मे विकल्प से अङ् आदेश किया गया है। भ. का. मे केवल 'श्च्युतिर् क्षरणे' धातु का ही उदाहरण-

  अश्च्यतुत् - भ. का. 6/28[8]

  अच्योतीत् - भ. का. 6/29[9]

  इसी तरह पा. सू. 3.1.134 सूत्र 'नन्दिग्रहिपपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' से निर्दिष्ट नन्दि धातु का उदाहरण दिया गया है-

  कपिनन्दनः - भ. का. 6/72[10]
- एक शब्द से ही जब शब्द-समूह का वर्णन किया गया हो तो भी केवल प्रथम शब्द का एक ही उदाहरण भ. का. मे दिया गया है। पा. सूत्र 8.3.98 'सुषमादिषु च' मे से सुषमादि शब्दो मे से केवल सुषमा शब्द का ही उदाहरण है-

सुषाम्नीम् - भ. का. 9/85[11]

- केवल कुछ प्रयोगो को छोडकर वैकल्पिक प्रयोग नही दिए गए है तथा अन्य वैयाकरणो द्वारा निर्दिष्ट वैकल्पिक प्रयोग भ. का. मे छोड दिए गए है। पा. सूत्र. 3.1.57 'इरितो वा' से निर्दिष्ट वैकल्पिक अङ् का उदाहरण भ. का. मे दिया गया है-

अवच्युतत् - भ. का. 6/28[8]

अच्योतीत् - भ. का. 6/29[9]

- पा. सू. 1.2.25 'तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य' मे तृष्, मृष्, तथा कृश् धातुओ से विहित-इडागम-विशिष्ट क्त्वा प्रत्यय काश्यपाचार्य के मत मे विकल्प से कित् नही होता है। इस सूत्र मे पाणिनि के अनुसार होने वाला कित् भट्टिकाव्य मे दिया गया है-

तृषित्वा - भ. का. 7/106[12]

- पाणिनि सूत्र 7.1.143 'विभाषाग्रह' के सामान्य तथा वैकल्पिक दोनो उदाहरण भट्टिकाव्य मे दिए गए है-

ग्रहेण - भ.का. 6/84[13]

ग्राहेण - भ.का. 6/84[13]

- पा. सू. 7.2.49 'सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भु......नाम्' 20 मे से 15 उदाहरण भ. का मे दिए गए है जैसे-

दिदेविषुम् - भ. का. 9/32[14]

ईत्र्सुम् - भ. का. 9/32

दुद्युषुः - भ. का. 9/32

आदिधिषुः - भ. का. 9/32

घिप्सुम् - भ. का. 9/33[15]

दिदिम्भिषु - भ. का. 9/33

संशिश्रीषुः - भ. का. 9/33

बिभ्रक्षुः - भ. का. 9/34[16]

बिभ्रज्जिषुः - भ. का. 9/35[17]

संयुयषुम् - भ. का. 9/35

यियविषू- भ. का. 9/36[18]

प्रोर्णुनविषुः - भ. का. 9/36

जिज्ञापयिषुः - भ. का. 9/37[19]

बुभुर्षु - भ. का. 9/37

- इसी तरह निपातन मे भी एक ही अत्युपयुक्त उदाहरण को भ. का मे दिया गया है, अन्यो को छोड दिया है। जैसे- पा. सूत्र 3.1.129 'पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या' सूत्र के एक ही शब्द का उदाहरण दिया है- निकाय्य- भ. का. 6/67[20]
- अनेक धातुओं मे जब एक विशेष प्रत्यय जोड़ा जाता है तो भ. का. मे सभी धातुओं को न देकर कम प्रयोग होने वाली तथा काव्य प्रवाह मे रूकावट डालने वाली धातुओ को छोड़ दिया है। पा. सू.- 3.1.58 'जृस्तम्भुम्रचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुचश्विभ्यश्च' मे इन धातुओ से निहित च्लि को विकल्प से अङ् आदेश किया है। भ. का मे दो पहले के तथा एक बाद का उदाहरण दिया गया है।

अस्तम्भीत् - भ. का. 6/30[21]

अस्तभत् - भ. का. 6/30

अजारीत्- भ. का. 6/30

अजरत् - भ. का. 6/30

अश्वताम् - भ. का. 6/31[22]

❖ एक धातु को जो अनेक अर्थो मे प्रयुक्त होती है, बहुत ही कम इसके सभी उदाहरण दिए गए है, अधिकतर अनुपयुक्त उदाहरण छोड़ दिए गए है। पा. सू. - 3.3.41 'निवासचितिशरीरोपसामाधानेष्वादेश्च कः' का उपसमाधान का उदाहरण छोड़ दिया गया है। जैसे-

स्तोककायैः - भ. का. 7/42[23] शरीर अर्थ मे-

रक्षोनिकायेषु - भ. का. 7/42 निवास अर्थ मे-

❖ यदि अनेक धातुओ का एक ही अर्थ मे प्रयोग हो तो भ. का. मे इस अर्थ मे एक धातु का प्रयोग दिखाया गया है। पा. सू. 3.3.95 'स्थागापापचोः भावे' सूत्र मे भाव अर्थ मे स्था, गा, पा, तथा पच् धातुओ से स्त्रीलिग मे क्तिन प्रत्यय होता है। भ. का. मे केवल 'स्था' धातु से भाव अर्थ मे क्तिन् प्रत्यय का प्रयोग दिखाया गया है।

स्थितिम् - भ. का. 7/68[24]

❖ यदि कुछ धातुओ से एक ही उपसर्ग जोडा जाता है तो भ. का. मे केवल एक ही उदाहरण दिया गया है। पा. सू. 3.3.27 'प्रे दुस्तुसुवः' से 'प्र' शब्द के उपपद होने पर 'दु' 'स्तु' तथा 'सु' धातुओ से 'धज्' प्रत्यय होता है। भ. का. मे केवल 'दु' धातु का ही उदाहरण मिलता है। यथा-

प्रदावैः - भ. का. 7/37[25]

❖ पा. सू. 1.3.22 'समवप्रविभ्यः स्थः' से सम्, अव, प्र, वि, उपसर्ग विशिष्ट स्था धातु से आत्मनेपद होता है। भ. का. मे तीन उदाहरण दिए गए है। यथा-

अवतिष्ठस्थ - भ. का. 8/11[26]

प्रस्थास्यसे - भ. का. 8/11

संस्थास्यते - भ. का. 8/11

❖ धातुओ से प्रत्यय जोडते समय भी भट्टिकाव्य मे एक ही प्रथम प्रत्यय का उदाहरण दिया गया है। बहुत कम प्रयोगो मे दो से छः तक उदाहरण दिए गए है।

यदि किसी सूत्र मे दो से अधिक धातुओं का निर्देश हो तो दो मुख्य उदाहरण देकर शेष को भ. का. मे छोड़ दिया गया है।

यथा- पा. सू. 3.1.133 'ण्वुल्तृचौ' मे से केवल 'ण्वुल' प्रत्यय का उदाहरण भ.का. मे मिलता है। यथा- कारकः - भ. का. 6/72[10]

❖ पा.सू. 3.1.141 श्याद्व्यधास्रुसंस्न्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च' के छः उदाहरण भ. का. मे मिलते है। यथा-

धायैः - भ. का. 6/80[27]

अवश्यायकणास्त्रावः - भ. का. 6/81[28]

चित्तसंस्रावम् - भ. का. 6/81

अवसायः - भ. का. 6/82[29]

अवहारः - भ. का. 6/82

लेहैः - भ. का. 6/83[30]

- जिन दीर्ध विधायक सूत्रो मे अनेक उदाहरण मिलते है, भट्टि उनके कम से कम उदाहरण देने की कोशिश करता है। पा. सू. 3.2.23 सूत्र 'न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रामन्त्रापदेषु' के तीन उदाहरण भ. का. मे दिए गए है यथा-

वैरकारम् - भ.का. 5/100[31]

कलहकारः - भ.का. 5/100

शब्दकारः - भ.का. 5/100

- कुछ स्थानो पर एक सूत्र के सात उदाहरण भ.का. मे मिलते है। पा. सू. 1.3.89 'न पादभ्यायस ङ्परिमुहरूचिनृतिवदवसः' सूत्र के भ.का. मे सात उदाहरण मिले है। यथा-

नर्तयमानवत् - भ. का. 8/61[32]

आयासयन्त - भ. का. 8/61

परिमोहयमाणाभिः - भ. का. 8/63[33]

प्रादमयन्त - भ. का. 8/63

वासयते स्म - भ. का. 8/64[34]

अरोचयत् - भ. का. 8/64

- पा.सू. 3.3.21 'दिवाविभानिशा.....ध्नुररूष्षु' सूत्र के छब्बीस उदाहरणो मे से भ.का. मे केवल तीन उदाहरण मिलते है। यथा-

दिवाकरः - भ. का. 5/99[35]

अन्तकरः - भ. का. 5/99

अरूष्करम् - भ. का. 5/100[31]

- पा. सू. 3.2.142 'संपृचानु........आहनश्च' सूत्र के भ.का. मे पन्द्रह उदाहरण दिए गए है। यथा-

संज्वारिणा - भ.का. 7/6[36]

द्रोहि - भ.का. 7/6

खद्योतसम्पर्कि - भ.का. 7/6

नयनाभोषि - भ.का. 7/6

संसर्गी - भ.का. 7/8[38]

अनुपकारिणम् - भ.का. 7/9[39]

योगिनम् - भ.का. 7/10[40]

अभ्याधातिभिः - भ.का. 7/7[37]

परिशरिभिः - भ.का. 7/7

परिसारिण्यः - भ.का. 7/7

परिदेविनम् - भ.का. 7/7

आक्रीडिनः - भ.का. 7/8[37]

दैवानुरोधिन्यः - भ.का. 7/9[38]

परिक्षेपी - भ.का. 7/10[40]

त्यागिनम् - भ.का. 7/10

- धातुओ की लम्बी सूची मे से भी उपयुक्त उदाहरण ही दिए गए है। बहुत की कम स्थानो पर सभी उदाहरण दिए गए है। पा. सू. 1.2.7 'मृडमुदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा' सूत्र मे केवल अधिक प्रयुक्त होने वाली 'मृद' -मृदित्वा भ. का. 7/95[41] 'कुष्' -कुषित्वा भ. का. 7/95[41] 'मुड' -अमृडित्वा भ. का. 7/96[42], 'क्लिश्' -क्लिशित्वा भ.का. 7/96[42] धातुओ के ही उदाहरण दिए गए है।
- पा. सू. 7.2.72 सूत्र मे सभी धातुएँ भ. का. मे दी गई है। यथा-

मा न प्रस्तावी	-	भ.का. 9/49[43]
मा न सावी	-	भ.का. 9/50[44]
मा न धावीः	-	भ.का. 9/50

निष्कर्ष -

अतः हम यह कह सकते है। भट्टिकाव्य व्याकरण की परम्पराओं और धातुओं का एक प्रामाणिक एवं मौलिक ग्रंथ है। व्याकरण अपनी नीरस एवं क्लिष्ट प्रकृति के कारण विकास करने मे स्वयं बाधक-भूत प्रतीत होता है। अतः इसको सरल प्रकृति का आवरण पहनाने का कार्य महाकवि भट्टि ने किया है।

भट्टि ने स्वयं अपनी रचना का गौरव प्रकट करते हुए कहा है कि यह मेरी रचना व्याकरण के ज्ञान से हीन पाठको के लिए नही है यह काव्य टीका के सहारे ही समझा जा सकता है। यह मेधावी विद्वान के मनोविनोद के लिए तथा सुबोध छात्र को प्रायोगिक पद्धति से व्याकरण के दुरूह नियमो से अवगत कराने के लिए रचा गया है-

व्याख्या गम्यमिदं काव्यमुत्सवः सुधियामलम्।
हता दुर्मेधसश्चाऽस्मिन् विद्वत्प्रियतया मया।। भ.का. 22/34

सन्दर्भः -

1. सद्रःमुक्ताफलवज्रभाञ्जि विचित्राधातूनि सकाननानि।
स्त्रीभिर्युतान्यप्सरसामिवौधैर्मेरोः शिरांसीव गृहाणियस्याम्।। भ.का. 1/7
2. विदाटुर्वन्तु रामस्य वृत्तमित्यवदत् स्वकान्।
रक्षांसि रक्षितुं सीतामाशिषच्च प्रयत्नवान्।। भ.का. 6/4
3. स तामूचेऽथ कच्चित्वममावास्यासमन्वये।
पितृणां **कुरुषे** कार्यमपाक्यैः स्वादुभिः फलैः।। भ.का. 6/64
4. सुप्रतिष्णातसूत्राणां कपिष्ठलसमत्विषाम्।
स्थितां वृत्ते द्विजातीनां रात्रावैक्षत मैथिलीम्।। भ.का. 9/83
5. द्विषन्! वनेचराऽग्रयाणां त्वमादायचरो वने।
अग्रेसरो जघन्यानां मा भूः पूर्वसरो मम।। भ.का. 5/97
6. ततः प्रास्थिषताऽद्रीन्द्रं महेन्द्र वानरा द्रुतम्।
सर्वे किलकिलायन्तो धैर्यं चाऽऽधिषताऽधिकम्।। भ.का. 7/102
7. हन्तुं क्रोधवशादीहाञ्चक्राते तौ परस्परम्।
न वा पलायाञ्चक्रे विदयाञ्चक्रे न राक्षसः।। भ.का. 5/106
8. सीतां जिघांसू सौमित्रे! राक्षसावारतां ध्रुवम्।
इदं शोणितमभ्यग्रं संप्रहारेऽश्च्युततयोः।। भ.का. 6/28
9. इदं कवचमच्योतीत्साऽश्वाऽय चूर्णितो रथः।
एह्यमुं गिरिमन्वेष्टुमवगाहावहे द्रुतम्।। भ.का. 6/29
10. सख्यस्य तव सुग्रीवः कारकः कपिनन्दनः।
द्रुतं द्रष्टाऽसि मैथिल्याः सैवमुक्त्वा तिरोऽभवत्।। भ.का. 6/72
11. सुषाम्नीं सर्वतेजस्सु तन्वीं ज्योतिष्टमां शुभाम्।

निष्टपन्तीमिवाऽऽमानं ज्यातिः सात्कुर्वतीं वनम्।। भ.का. 9/85
12. वञ्चित्वाऽप्यम्बरं दूरं स्वस्मिंस्तिष्ठन्तमात्मनि।
तृषित्वेवाऽऽरमानं स्वादु पिबन्तं सरितां पयः।। भ.का. 7/106
13. समाविष्टं ग्रहेणेव ग्राहेणेवात्तमर्णवे।
दृष्ट्वा गृहान्स्मरस्येव वनान्तान्मम मानसम्।। भ.का. 6/84
14. शस्त्रेदिदेविषुं सख्ये दुद्यूषु परिघं कपिः।
अर्दिघिषुर्यशः कीर्तिमीत्सु वृक्षैरताडयत्।। भ.का. 9/32
15. भूयस्तं धिप्सुमाहूय राजपुत्रं दिदम्भिषुः।
अहंस्ततः स मूच्छावान् सशिश्रीषुरभूद ध्वजम्।। भ.का. 9/33
16. आश्वास्याऽक्षः क्षणाल्लोकान् बिभ्रक्षुरिव तेजसा।
रूषा बिभ्रज्जिषुप्रख्यं कपिं बाणैरवाकिरत्।। भ.का. 9/34
17. संयुयूषुं दिशो बाणैरक्षं यियविषुद्रुमः।
कपिर्मायामिवाऽकार्षीद्दर्शयन् विक्रमं रणे।। भ.का. 9/35
18. वानरं प्रोर्णुनविषुः शस्त्रैरक्षो विदिद्युते।
तं प्रोर्णुनुषुरूपलैः सवृक्षैराबभौ कपिः।। भ.का. 9/36
19. "स्वां जिज्ञापयिषू बुभूर्षू न जगन्ति किम्' ' ।
शस्त्रैरित्यकृषातां तौ पश्यतां बुद्धिमाहवे।। भ.का. 9/37
20. न प्रणाय्यो जनः कच्चिन्निकाय्यं तेऽधितिष्ठति।
देवकार्यविधाताय धर्मद्रोही महोदये!।। भ.का. 6/67
21. मन्युर्मन्ये ममाऽस्तम्भीद्विषादोऽस्तभद्द्रयातम्।
अजारीदिव च प्रज्ञा बलं शोकात्तथाऽजरत्।। भ.का. 6/30
22. गृधस्यहाऽश्वतां पक्षौ कृतौ वीक्षस्व लक्ष्मण।
जिघत्सोर्नूनमापादि ध्वंसोऽयं तां निशाचरात।। भ.का. 6/31
23. सीता रक्षोनिकायेषु स्तोककायैश्छलेन च।
मृग्या शत्रुनिकायानां व्यावहासीमनाश्रितैः।। भ.का. 7/42
24. निहतश्च स्थितिं भिन्दन् दानवोऽसौ बलद्विषा।
दुहिता मेरुसावर्णेरहं नाम्ना स्वयंप्रभा।। भ.का. 7/68
25. उन्नायानधिगच्छन्तः प्रदावैर्वसुधाभृताम्।
वनाऽभिलावान् कुर्वन्तः स्वेच्छया चारू विक्रमा।। भ.का. 7/37
26. क्षणं भद्राऽवतिष्ठस्व ततः प्रस्थास्यसे पुनः।
न तत् सस्थास्यते कार्यं दक्षेणोरीकृतं त्वया।। भ.का. 8/11
27. ददैदुःखस्य मादृग्भ्यो धायैरामोदमुत्तमम्।
लिम्पैरिव तनोर्वातैश्चेतयः स्याज्ज्वलो न कः।। भ.का. 6/80
28. अवश्यायकणास्त्रावाश्चारूमुक्ताफलत्विषः।
कुर्वन्ति चित्तसंस्त्रावं चलत्पर्णाऽग्रसम्भृतः।। भ.का. 6/81
29. अवसायो भविष्यामि दुःखस्याऽस्य कदान्वहम्।
न जीवस्याऽवहारो मां करोति सुखिनं यमः।। भ.का. 6/82
30. दह्येऽहं मधुनो लेहैदावैरूग्रैर्यथा गिरिः।
नायः कोऽत्रा सत्येन स्यां बताऽहं विगतज्वरः।। भ.का. 6/83
31. सतामरुष्करं पक्षी वैरकारं नराशिनम्।
हन्तुं कलहकारोऽसौ शब्दकारः पपात खम्।। भ.का. 5/100
32. अवाद्वायुः शनैर्यस्यां लतां नर्तयमानवत्।
नाऽऽयासयन्त सन्त्रस्ता ऋतवोन्योन्यसंपदः।। भ.का. 8/61
33. प्रादमयन्तं पुष्पेषु यस्यां बन्द्यः समाहृताः।
परिमोहयमाणाभी राक्षसीभिः समावृताः।। भ.का. 8/63
34. यस्या वासयते सीतां केवल स्म रिपुः स्मरात्।
न त्वरोचयताऽऽत्मानं चतुरो वृद्धिमानपि।। भ.का. 8/64

35. अहमन्तकरो नूनं ध्वान्तस्येव दिवाकरः।
तव राक्षस! रामस्य नेयः कर्मकरोपमः।। भ.का. 5/99
36. संज्वारिणेव मनसा ध्वान्तमायासिना मया।
द्रोहि खद्योतसंपर्कि नयनाऽभोषि दुःसहम्।। भ.का. 7/6
37. कुर्वन्ति परिसारिण्यो विद्युतः परिदेविनम्।
अभ्याधातिभिरामिश्राश्चातकैः परिराटिभिः।। भ.का. 7/7
38. संसर्गी परिदाहीव शीतोऽप्याभाति शीकरः।
सोढुमाक्रीडिनोऽशक्याः शिखिनः परिवादिनः।। भ.का. 7/8
39. एता देवानुरोधिन्यो द्वेषिन्य इव रागिणम्।
पीडयन्ति जनं धाराः पतन्त्योऽनपकारिणम्।। भ.का. 7/9
40. कुर्याद् योगिनमप्येष स्फूर्जावान् परिमोहिनम्।
त्यागिनं सुखदुःखस्य परिक्षेप्यम्भसामृतुः।। भ.का. 7/10
41. बभूव याऽधिशैलेन्द्र मृदित्वेवेन्द्रगोचरम्।
कुषित्वा जगतां सारं सैका शटे कृता भुवि।। भ.का. 7/95
42. अमृडित्वा सहस्राऽक्षं क्लिशित्वा कौशलैनिजैः।
उदित्वाऽलं चिरं यत्नात् सैका धात्रा विनिर्मिता।। भ.का. 7/96
43. स त्वं हनिष्यन् दुर्बुद्धिं कपिं व्रज ममाऽऽज्ञया।
मा नाऽञ्जी राक्षसीर्मायाः प्रस्तावीर्मा न विक्रमम्।। भ.का. 9/49
44. मा न सावीर्महाऽस्त्राणि मा न धावीररि रणे।
वानरं मा न संयंसीव्रज तूर्णमशटितः।। भ.का. 9/50

सन्दर्भ ग्रन्थ -

1. लघुसिद्धान्त कौमुदी (भैमी व्याख्या) भीमसेन शास्त्री, भैमी प्रकाशनम्, दिल्ली, 1980।
2. पाणिनीय धातुपाठ, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, तारा पब्लिकेशन्स वाराणसी, 1964।
3. संस्कृत शास्त्र का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1969।
4. संस्कृत व्याकरण का उद्भव व विकास, डॉ. सत्यकाम वर्मा, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली-1971।
5. भट्टिकाव्यम्, प. श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, चैखम्भा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी
6. भट्टिकाव्यम्, डॉ. श्री गोपालशास्त्री, चैखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी